आडवाणी और राजनीति का सच

127 – सम्पादक –

संसदीय लोकतंत्र में संसद की शक्ति दो ध्रुवों पर केन्द्रित होती है एक सत्तापक्ष ओर दूसरा विपक्ष। सत्तापक्ष का नेतृत्व अभी कांग्रेस के पास है जिसके नेता अभी मनमोहन सिंह जी अर्थात प्रधानमंत्री जी ह और विपक्ष का नेतृत्व अभी भारतीय जनता पार्टी के पास है जिसके नता अभी लाल कृष्ण आडवाणी जी आर्थात विपक्ष के नेता ह। इन दोनों के ही नेतृत्व में संसद चलती है। आर्थात देश चलता है।

पिछले दिनों सत्ता पक्ष के नेता और प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह जी ने राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में कहा कि भारत के सभी संसाधनों पर अल्पसंख्यकों का पहला अधिकार है विशेष रूप से मुसलमानों को यह बात एकाएक नही कही गई न ही सामान्य स्थिति में कही गई पूरी तैयारी से लिखा गया। राष्ट्रीय विकास परिषद के भाषण में इस वाक्य का उल्लेख है। यह वाक्य अत्यन्त गंभीर भी ह, और खतरनाक भी। आदिवासी हरिजन के पिछडेपन और मुसलमानों के पिछडेपन में जमीन आसमान का अंतर है।

आदिवासी हरिजन समाज में सवर्णो के पक्ष में बनी मान्यताओं के कारण पिछडा न कि अपनी गल्तियों के कारण पिछडा है। किसने कहा आपको इराक और सददाम की चिन्ता करने को क्यों गये आप बुश का विरोध करने और यदि आप इस कार्य को अवश्यक मानते है तो क्या आपकी इन कामों में लगने वाली शक्ति के कारण उत्पन्न कमजोरी की पूर्ति समाज करे? खैर हम तो यह विचार कर रहे है कि भारत के प्रधानमंत्री ने यह असत्य क्यों कहा?

पूरा भारत जानता है कि यह कथन पूरी तरह अन्यायपूर्ण भी है और खतरनाक भी। कांग्रेस पार्टी भी यह अच्छी तरह जानती है कि मुसलमानों का तुष्टीकरण समाज के लिये भी घातक है और देश के लिये भी मनमोहन सिंह भी इस यथार्थ को न समझते हो ऐसी कोइ बात नही किन्तु सत्ता के दावं पच उन्ह ऐसा कहने के लिये मजबूर कर रहे है। मुसलमान पूरी तरह संगठित ह वह जब चाहे तब राजनैतिक समीकरण बिगाड सकता है। मुसलमानों को खुश रखना इनकी सत्ता की मजबूरी है चाहे उन्हें इसके लिये अन्य लोगों के न्यायपूर्ण अधिकारों की कितनी ही कुर्बानी क्यों न देनी पडे। इसी राजनैतिक लाभ के लिये मनमोहन सिंह जी ने उस महत्वपूर्ण अवसर पर ऐसी असत्य बात कही।

भारतीय राजनीति में प्रधानमंत्री के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान विपक्ष के नेता का होता है। विपक्ष के नेता लालकृष्ण आडवाणी जी ने एक इंटरव्यू में कहा कि विपक्ष को बहुमत प्राप्त होने पर विपक्ष का नेता ही प्रधानमंत्री पद का स्वाभाविक दावेदार होता है। दुर्भाग्य से उनके मार्ग कें रोडे अटकाये जा रहे ह। उनका यह वाक्य भारतीय राजनेताओं के मानसिक यथार्थ की स्पष्टोक्ति है। प्रश्न यह नही है कि यह समस्या आडवाणी मात्र की ही हो। सच्चाई यह है कि भारत का हर राजनेता किसी भी तरह सर्वोच्च संभव पद पाने के लिये ही राजनीति में सक्रिय है। अन्य राजनेताओं की उम्मीदें अभी समाप्त नही हुई है। इसलिये वे अपनी भावनाओं को नंगा करके अपनी संभावनाओं को नुकसान नही पहुचाना चाहता जबकि आडवाणी जी ने निराश होकर राजनीति के सच को समाज के समक्ष नग्न रूप में प्रकट कर दिया।

आडवाणी जी ने जो कुछ कहा वह आम भारतीय राजनेता के मन का सच है किन्तु अनुपयुक्त स्थिति में सत्य को प्रकट करना हानिकर भी हो सकता है। आडवाणी जी का सत्य उनके लिये हानिकर रहा। लगा जैसे कि वे कुछ कुछ राजनीतिक अवसाद अर्थात अल्प विक्षिप्तता में जा रहे है। उन्हें सोचना चाहिए कि विपक्ष के नेता का पद उनका स्वाभाविक पद न होकर एक आमानत है। जो पार्टी के सांसदों और अप्रत्यक्ष रूप से पार्टी की इच्छा पर निर्भर है। ऐसे पद के लिए इस तरह सार्वजनिक दावा करना किसी भी दृष्टि से उचित नही कहा जा सकता। लालू ,मुलायम, मायावती यह दावा करें तो उचित हो सकता है। क्योकि वे अपने अपने दल के एकक्षत्र है। किन्तु आदवाणी जी की स्थिती वैसी नही है। फिर भी आडवाणी जी ने उक्त वाक्य कहकर अपना चाहे जो नुकसान किया हो किन्तु उन्होनें राजनैतिक सच को समाज के समक्ष प्रकट तो कर दिया है।

भारत की सम्पूर्ण राजनैतिक व्यवस्था का वास्तविक स्वरूप इन दो घटनाओं से प्रत्यक्ष हो जाता है। देश के प्रधानमंत्री अपने दलीय स्वार्थ की मजबुरी में एक खतरनाक असत्य समाज के समक्ष प्रस्तुत कर रहे ह जो भविष्य मे देश को भी नुकसान करेगा और समाज को भी। दूसरी ओर विपक्ष के नता अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण एक ऐसा राजनीति का सच उजागर कर रहे है जो सम्पूर्ण राजनैतिक व्यवस्था को ही संदेह के घेरे में डाल देगा। राजनीति से जुडा हुंआ प्रत्येक व्यक्ति राजनीति को या तो व्यवसाय समझ रहा है। या अपराधियों की शरणस्थली। इक्के दुक्के लोग ही अब राजनीति में होगें जो इसके अतिरिक्त राजनीति को कुछ और समझतें है। पहले दिन से ही ये सब लोग पावर की अन्तहीन दौड में दौडना शुरू कर देते है आर यह दौड कही भी समाप्त नही होती। इस दौड में इनकी नैतिकता सामाजिकता लाज शर्म सब खूँटी पर टंग जाती है। दिखाई देती है। सिर्फ अगली छलांग में पकड में आने वाली कुर्सी। लालू प्रसाद तो अपनी बेहयाई के लिये जगत प्रसिद्ध है ही, आडवाणी जी भी इतन नीचे उत्तर जायेगें यह किसी को उम्मीद नही थी। लेकिन वह प्रमाणित हो गया कि भारत की राजनीति सिर्फ और सिंर्फ कुर्सी दौड है जिसमें सभी कार्यकर्ता दिन रात सोते जागते दौड लगा रहे है।

ऐसी विकट स्थिति में समाज के चिन्तनशील व्यक्तियों के समक्ष बिल्कुल अंधेरा ही अंधेरा दिख रहा है। राजनेताओं की अपनी एक अलग जाति बनती जा रही हे जो धीरे धीरे कर्म पर आधारित न रहकर जन्म पर होती जा रही है। समाज की एक अलग जाति बनती जा रही है। जो उस जाति में से ही किसी को अपना भाग्य विधाता चुनने के लिये मजबूर है।

राजनीति में जब समाज सेवा का कोई भी स्थान दूर दूर तक नही है तब यदि कोई व्यक्ति समाज सेवा के उददेश्य से राजनीति में है तो वह या तो समाज को धोखा दे रहा है या स्वयं धोखा खा रहा है। यदि राजनीति में एक भी भला आदमी मौजूद है तो वह हमारे ध्रुवीकरण मे बाधक है जिसका मतलब स्पष्ट है कि वह इस महासंग्राम में हमारा पक्ष कमजोर कर रहा है। जब यह पूरी तरह प्रमाणित हो चुका है कि भारत की वर्तमान राजनीति या तो अपराध जगत का खेल है या व्यवसाय का तब शराफत का कवच क्यो? समाज के समक्ष आडवाणी जी के समान खुल कर आवें। और यदि मजबूर कर दें। कम से कम समाज को धोखा तो नही होगा छिप छिप कर राजनीति करने की अपेक्षा तो मायावती ने ठीक किया कि सत्य को स्पष्ट रूप से समाज के समक्ष रख दिया है। अब भी समय बीता नही है। जो भी लोग राजनीति में रहकर समाज सेवा करना चाहते हैं। उन्हें तत्काल राजनीति से दूर हो जाना चाहिए और जो लोग राजनीति में रहकर समाज सेवा करना चाहते है। उन्हें तत्काल रजनीति से दूर हो जाना चाहिए पर अंकुश कि चिन्ता शुरू कर देनी चाहियें। राजनीति का अब जो गंदा स्वरूप है वह न तो साफ हो सकता है। न ही बर्दाशत हो सकता है। अब तो बस एक ही मार्ग है कि राजनीति से दूर रहकर राजनीति पर अंकुश का अभिनव प्रयोग शुरू किया जावे।

धर्म को धर्म ही रहने दो

व्यक्ति, परिवार और समाज एक दूसरे के पूरक भी होते है और नियंत्रक भी। तीनों में से किसी को भी अनियंत्रित अधिकार नही और न ही तीनों में से कोई भी अधिकार शुन्य होता है। तीना अपनी अपनी सीमाओं में रहते हुए एक दूसरे के साथ सामंजस्य करते ह।

धर्म की अब तक की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा यही है कि ''व्यक्ति के दूसरों के प्रति किये गये कर्तव्यों को धर्म कहते है।'' धम का कभी सांगठनिक स्वरूप नही रहा। संगठन बनते हो वह सम्प्रदाय बन जाता है इस्लाम तो पूर्ण रूपेण संगठन है ही, इसाइयत में भी आंशिक रूप से संगठन का कोई के गुण पाये जाते है। हिन्दुत्व में संगठन का कोई लक्षण नही है। किन्तु समाज का ढांचा बिल्कुल भिन्न होता है। समाज का एक संगठित स्वरूप होता है। और उसका अनुशासन भी होता है किन्तु धर्म में ये सब गुंण नही होतें।

पिछले दिनों जबलपूर मध्यप्रदेश की एक हिन्दू लडकी मोना जो पोलियो ग्रस्त होने से आपाहिज थी पैंतीस वर्ष की होने तक विवाह नही कर सकी। उसने एक सैंतीस वर्ष के इसाई रिक्शा चालक पीटर से विवाह की इच्छा व्यक्त की। परिवार के लोग भी तैयार हा गये। अदालत में विवाह की अर्जी दी गई अदालती कार्यवाही चल ही रही थी कि कुछ हिन्दु संगठनों का धर्म प्रेम जगा। इन संगठनों ने विवाह न करने का दवाव बनाना शुरू किया। दोनों के न मानने पर इन लोगों ने प्रशासनिक अधिकारियों पर दबाव बनाया। मध्य प्रदेश में भाजपा की सरकार होने से ऐसे धार्मिक संगठनों का प्रशासन पर बहूत दबाव स्वाभाविक ही है। प्रशासन ने टाल मटोल शुरू कर दी। मोना और पीटर ने राज्यपाल बलराम जाखड के दरबार में गुहार लगाई तब प्रशासनिक अधिकरियों ने हार थक कर इस विवाह को अनुमति देने की पहल की।

विवाह एक युवक और युवती का मौलिक अधिकार है। इसमें किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नही की जा सकती। विवाह का मान्य सिद्धान्त यही है कि उसमें लडकें लडकी की स्वीकृति परिवार की सहमति और समाज की अनुमति का तालमेल होता है। सबकी अपनी अपनी सीमाएँ होती है। यदि लडके और लडकी बिना परिवार की सहमति ओर समाज की स्वीकृति के विवाह करते है तो परिवार विवाह को रोका नही जा सकता भले हो वह उन्हें परिवार से अलग क्यो न कर दे। यदि परिवार विवाह के लिये सहमत हा तब समाज के समक्ष तो और भी कम विकल्प बचते है। बहुत विशेष परिस्थितियों में ही समाज हस्तक्षेप कर सकता है। और वह भी समझाने बुझाने या सामाजिक बहिष्कार की सीमाओं के अन्दर। आजकल ये सीमाएँ चौतरफा टूट रही है। जो व्यवस्था क लिये एक चिन्ता का विषय है। लडकें लडकी, परिवार और समाज को कुछ समझते ही नही और परिवार और समाज इस सीमा तक अपना अधिकार समझने लगे है। कि वे ऐसे विवाहों में दण्ड स्वरूप हत्या तक कर देते है।

हिन्दू धर्म वालों ने धार्मिक संख्या वृद्धि के किसी भी प्रयास पर एकपक्षीय रोक लगा रखी है। अपेक्षा थी कि इसाई और मुसलमान भी कम से कम इतनी तो शालीनता अवश्य रखेगें कि वे संख्या वृद्धि के प्रयासों को अनैतिकता की सीमा तक न जाने दे इसाइयों ने आशिक रूप से ऐसा परहेज किया भी है किन्तु मुसलमानों ने हिन्दुओं के इस एक तरफा प्रयत्न विराम का भरपूर दुरूपयोग किया है। कुछ हिन्दु संगठनों में अपनी घटती संख्या से चिन्ता होना स्वाभविक भी है और ऐसे एक पक्षीय प्रयत्न विराम के विरूद्ध उनके मन में ज्वार उठना भी स्वाभाविक है। किन्तु ऐसे ज्वारे में नैतिकता की सीमाओं को तो नही तोडा जा सकता। विवाह एक लडके ओर लडकी का मूल अधिकार है। समाज और परिवार ऐसे विवाह को समझा बुझाकर तो रोक सकते ह। बल प्रयोग से नही। ऐसे समझाने बुझाने और सीमित मात्रा में भय पैदा करने का सामान्य स्थिति में आंख से ओझल भी किया जा सकता है। क्याकि मुसलमानों और इसाइयों का व्यवहार इस संबंध में मर्यादित नही है। किन्तु मोना पीटर का विवाह प्रकरण

कोई सामान्य घटना न होकर एक विशेष घटना है। यह बात नही भुलाई जा सकती कि मोना एक अपाहिज लडकी है जिसके विवाह को अब तक पद्रह वर्ष देर हो चुकी है। अब यदि उस लडकी का विवाह किसी ईसाई युवक से भी होता है। तो धर्म का कार्य है। धर्म विरूद्ध तो हो ही नही सकता मेरे एक जनसंधी मित्र ने इसाई लडकी हिन्दू बनाकर उससे विवाह किया। बच्चे विवाह योग्य हुए तब तक ता समस्या नही आई किन्तु बच्चों की विवाह की उम्र जब पार होने लगी और कोई अग्रवाल युवक तैयार नही हुआ तब समस्या पैदा हुई। अन्त में मैने स्वयं पहल करके उन बच्चों का विवाह इसाइयों में करने की उनकी पत्नी ने चर्च में आना जाना शुरू कर दिया। मेरे कई साथी मेरे निर्णय का गलत बताते है। और मैं उनके निर्णय का आमानवीय बताता हूं। मेरे निर्णय को गलत बताने वाले यह क्यों नही बताते कि वे क्या करे, ऐसा ही प्रश्न मोना पीटर के मामाले में भी खडा होता है, जो लोग इस विवाह को हिन्दू धर्म के लिए हानिकारक मानते है। वे धर्म को तो बिल्कुल ही नही मानते हिन्दु धर्म से भी कोसों दूर है। हिन्दु धर्म धर्म का ही एक रूप है। जो संकीर्ण धार्मिकता का विश्वास नही करता विशेष स्थितियों में यदि कुछ संकीर्णता आवश्यकता भी हो तो उसे मजबुरी माना जा सकता है। आदर्श नही। मोना पीटर के मामले में तो न कोई आदर्श है न कोई मजबुंरी। यह तो पूरी तरह या तो नासमझी है या दादागिरी। धर्म रक्षा के नाम पर ऐसे कार्य न धर्म की रक्षा कर सकते है। न हिन्दु धर्म की।

यदि धर्म रक्षा के नाम पर ऐसे अमानवीय असामाजिक कार्यो का प्रोत्साहन दिया गया तो इस्लाम और हिन्दुत्व म फर्क ही क्या रह जायगा? क्या हिन्दु धर्म के समक्ष ऐसी आपातकालिन स्थिति आ गई है कि हिन्दु धर्म रक्षा के लिये एक एक व्यक्ति की चिन्ता की जाय और उस चिन्ता में ऐसे मजबूर लोगों कि मजबूरी को भी न समझा जाय। मेरे विचार में हिन्दू धर्म के समक्ष आया संकट ऐसा गंभीर नही और यदि हो तब भी हमें मोना पीटर जैसे कुछ विशेष मामलों में तो छुट देनी ही होगी। वर्तमान भारत में हिन्दु धर्म रक्षा के नाम पर जो असामाजिक अनैतिक प्रयत्नों की बाढ आ रही है वह बाढ भी हिन्दू धर्म के लिये कम खतरनाक नही है। धर्म का बचना हिन्दु धर्म की सुरक्षा से भी अधिक महत्वपूर्ण है। इसलियें मेरा हिन्दू धर्म रक्षकों से निवेदन है कि धर्म को धर्म ही रहने दे। धर्म में विकृति हिन्दू धर्म के लिये बहुत घातक होगी।

पत्रोत्तर

प्रश्न – आपके विषय में ऐसा प्रचार हुआ हैं कि आप बहुत जिददी है। आप इस आरोप से कितना सहमत है?

उत्तर – विचार और व्यवस्था बिल्कुल अलग अलग होते है। मैं दोनो का अंतर अच्छी तरह समझता हूँ। मैं विचारों के मामले में कभी समझौता नहो करता। विचारो के मामले में दृढ होना अच्छा गुण होता है और इसके लिये मुझे जिददी शब्द से खुशी होती है। किन्तु कार्यक्रमों के मामले में अन्य लोगो से बहुत अधिक लचीला हूं। इन मामलों में मै अन्य साथियों के साथ पूरा पूरा सामजस्य करता हूँ।

दो तीन चार सितम्बर दो हजार पांच के दिल्ली सम्मेलन में ऐसा ही अवसर आया। जो प्रस्ताव विचारार्थ प्रस्तुत हुआ, उसमें यह लिखा था कि जो लोग इस चार सूत्रीय संविधान संशोधन से सहमत हो वे सभी इस आन्दोलन से जुड सकते है चाहे अन्य मुददों पर उनके विचार कुछ भी क्यों न हों। वहाँ सर्वोदय के एक प्रदेश स्तर के पदाधिकारी ने आपत्ति उठाई कि साम्प्रदायिक तत्वों को इस अभियान से न जोडा जाय। उन्हें मैने भी बहुत समझाया ओर दूसरों ने भी, किन्तु वे नही माने। उन्होने साफ कहा कि वे प्रवीण तोगडिया सरीखे साम्प्रदायिक लोगों के साथ मिलकर काम करने को तैयार नही, बहुत समझाने के बाद भी वे नही माने। मैने प्रस्ताव मतदान के लिये रखा तो एक के विरूद्ध एक सौ के बहूमत से प्रस्ताव पारित हआ। उन्होने मेरे उपर आरोप लगाया कि मैं जिददी हूँ। उन्होने यह भी आरोप लगाया कि प्रस्ताव सर्वसम्मत न होने से गाधी भावना के विपरीत है। मैं बहुत सोचता रहा कि जिददी मैं हूँ। या वे? मैं यह भी सोचता रहा कि क्या यही सर्वोदय की सर्व सम्पति है। मेरे विचार में यह कोई सैद्धान्तिक प्रश्न नही था। व्यावहारिक मुददों पर इस तरह जिद करके सर्वसम्मति की भावना को ब्लैक मेल करने के प्रयास को गांधीवाद नही कहा जाता है। मैं आज भी महसूस करता हूँ कि यदि उनकी जिद के समक्ष झुक जाता तो मैं पूरी बैठक की आम राय के साथ घोरा अन्याय करता उक्त मित्र आज भी मुझे जिददी कहा करते है जो मेरे विचार में उनका भ्रम मात्र है।

प्रश्न– आप व्यवस्था परिर्वतन अभियान, श्रम शोषण मुक्ति अभियान, आदि संस्थाओं मे मुख्य कर्ता–धर्ता है। इन संस्थाओं का खर्च कैसे चलता है खर्च क हिसाब किताब में किस सीमा तक पारदर्शिता रखते है।

उत्तर– व्यवस्था परिवर्तन अभियान श्रमशोषण मुक्ति अभियान लोक स्वराज्य मंच आदि संस्थाएँ अपने खर्च के लिय जो भी धन एकत्रित करती है उसके आय व्यय के बजट और हिसाब किताब से मेरा कोई सम्बन्ध नही हैं। वे अपना इकटठा करते है। खर्च करते है। हिसाब रखते है। और हिसाब देखते है, मेरा सम्बन्ध सिर्फ ज्ञान यज्ञ मण्डल के आय व्यय से है।

ज्ञान यज्ञ मण्डल की आय का एकमात्र आधार संरक्षण सभा से प्राप्त धन है। इस सम्पूर्ण राशि के खर्च का संरक्षण सभा ही बजट बनाती है। वही हिसाब रखती है तथा वही निरीक्षण की प्रक्रिया भी तय करती है। ज्ञान यज्ञ मण्डल को संरक्षण सभा की घोषित प्रकिया से बाहर जाकर न खर्च करने का अधिकार है न हिसाब रखने का। संरक्षण सभा के बजट खर्च पर नियंत्रण और हिसाब किताब देखने के विशेषाधिकार में किसो अन्य

का कोई हस्तक्षेप नही है हिसाब किताब रखने की पूरी प्रणाली संरक्षण सभा का विशेषाधिकार है और उनके बीच सम्पूर्ण पारदर्शिता है। मेरा भी ज्ञान यज्ञ मण्डल के रूप में हिसाब किताब से कोई संबंध नही है।

च प्रश्न – कुछ माह पूर्व सच्चर समिति ने निष्कर्ष निकाला है कि भारत में मुसलमान बहुत पिछडे हुए ह। शिक्षा रोजगार राजनीति आदि सभी क्षेत्रो में इनकी भागीदारी आबादी के अनुपात में बहुत ही कम है। चिन्ताजनक पहलू यह है कि इनकी आबादी बढने के बाद भी इनके रोजगार के अवसर लागातार कम होते जा रहे है। आप इससे किस सीमा तक सहमत है?

उत्तर– सच्चर समिति ने जो नतीजा निकाला वह पूरी तरह सही है। शिक्षा रोजगार तथा राजनीति के क्षेत्र मे मुसलमान हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक पिछडे हए है किन्तु इसका यह अर्थ नही कि वे सामाजिक आर्थिक मामलों में किसी भी रूप में शाषित है। सच्चर आयोग की जाँच के मुददे एक पक्षीय थे जो एक गलत नीयत से तय किये गये थे।

आज भारत का मुस्लमान इराक और अमेरिका के युद्ध में भी तुलनात्मक रूप से बहुत आगे बढ चढकर उत्साह प्रदर्शित करता है। इराक के तानाशाह सददाम को फांसी होती है। तो मुसलमान बढ चढ कर प्रदर्शन करता है विदेशो में मुहम्मद साहब के कार्टून का विवाद होता है तो भारत का मुसलमान विरोधं करने में जरा भी कमजोरी नही दिखता। बुश की भारत यात्रा के समय भी भारत के मुसलमानों ने विरोध प्रदर्शन पर दिल खोलकर खर्च किया। मुसलमान सरकारी सामान्य स्कूलों में पढने की अपेक्षा अपने अलग मदरसो में पढना अधिक पसंद करता हे इतने स्पष्ट लक्षणो के बाद भी भारत के मुसलमों का पिछडा कहना कहने वालां का कोई स्वार्थ प्रकट करता है। उनकी राजनैतिक शक्ति को कमजोर कैसे कहा जा सकता है। राजनीति के महत्वपूर्ण पदों पर न रहते हुए भी सभी राजनैतिक दल उन्हे विशेष अधिकार देने के पक्ष में दिखते है। भाजपा को छोडकर कोई भी ऐसा दल नही जो मुसलमानों को समान अधिकार की बात करे। यदि गरीबी की चर्चा करें तो यदि ये लोग आर्थिक दृष्टि से बहुत गरीब है तो इनकी आबादी वृद्धि पर भी इसका बुरा असर होना चाहिए था। मुसलमानों की आबादी तो अन्य सबकी अपेक्षा अधिक ही बढ रही है। मेरे विचार में इस्लाम में संगठन के गुण अधिक है धर्म के कम। संगठन सामूहिक उन्नति का अधिक महत्व देता हे जो उसका एक गुण है। संगठन में विषमता कम हाती है क्योकि सब सबकी चिन्ता करते है। यही कारण है कि भारत के मुसलमान विदेश तक कि चिन्ता करता रहा है जो दूसरे लोग नही करते हिन्दुओ की अपेक्षा मुसलमानों में आर्थिक असमानता कम है। हिन्दुओं मे आर्थिक समानता का अंतर यदि एक से सौ माना जाय तो मुसलमानों में यह अंतर पांच से पचास मिलेगा क्योंकि मुसलमानो में सौ वाला एक की चिन्ता करके उसे उपर उठाने का प्रयास करता है। सच्चर समिति ने जाच की कि पचास से उपर वाले वर्ग की मुसलमानों की संख्या कम होने से वे आर्थिक स्तर में पिछडे है। मेरा मत है कि पांच से नीचे में मुस्लमानों की संख्या कम होन से वे हिन्दुओं से कम पिछडे हैं मेरा यह स्पष्ट विचार है। कि मुसलमानों के विपन्नों की अपेक्षा हिन्दुओं के आदिवासी हरिजन विकास के क्षेत्र में कई गुना अधिक पिछडे है। दुसरा प्रश्न यह भी है कि मुसलमाना को सामाजिक स्तर पर समान अधिकार प्राप्त है और धामिक स्तर पर विशेष। यह अलग बात है कि वे अपने संसाधनो का एक हिस्सा सददाम इराक अफगानिस्तान और आबादी वृद्धि की चिन्ता पर खर्च कर दे। तथा सम्पन्नता की दौड में पिछड जावें और जब वे पिछड जावें तो उनके हित चिन्तक सच्चर समिति बनाकर उसकी जांच कराना शुरू कर दे।

प्रश्न उठता है कि मुसलमान यदि कुछ मामलों में पिछडा रहे है तो दोषी कौन? मुसलमानों की आबादी भारत में बारह प्रतिशत के करीब है। भारत में कुल पोलियों रोगियों में मुसलमान पचास प्रतिशत से अधिक है। क्या पोलियों का विषाणु मुसलमानों को विशेष रूप में पहचानता है या इस रोग में भी कुछ हिन्दुओं का ही दोष है स्वाभाविक है कि दोनो ही बातें गलत है। और इसका करण उन्हें अपने ही अन्दर खोजना होगा। मेरे विचार से विकास की दौड में पिछडने का कारण भी मुसलमानों को अपने अंदर ही खोजना होगा। आपने संसाधन इधर उधर बर्बाद करके दूसरों के संसाधानों से तुलना का रोना रोने का कोई लाभ नही।

प्रश्न – ज्ञान तत्व अंक **123** में आपने मेघा पाटकर का विदेशी धन से संबंध होने की ओर इशारा किया है। यह बात कितनी सच है? यदि सच है तो कितनी गलत है?यदि गलत तो क्यों?

उत्तर– मैने ज्ञान तत्व अंक **123** को पुनः पढा। मैने उस अंक में न मेघा पाटकर जी का कही नाम लिखा है न ही उधर इशारा किया है। मैने लिखा है कि N A P M जन आंदोलनों का मंच है अर्थात आंदोलन की दिशा स्पष्ट नही है कि उसका उददेश्य क्या है। जन आंदोलन किसी मंच का उददेश्य नही हो सकता। यदि आंदोलन के लिये कोई आंदोलन होता है तो मेरे विचार में उसके पीछे या तो कोई विदेशी धन है या सत्ता संघर्ष। इस वाक्य में मेघा जी की ओर तो काइ इशारा है ही नही। मंच की ओर भी कोई ईशारा नही है क्योकि मंच स्वयं में संगठन न होकर संगठनों का मंच है और उससे जुडे अनेक संगठनों में से कई विदेशी धन भी लेते होगें और कई राजनैतिक सत्ता की भी इच्छा रखते होगे पिछले लोकसभा चुनाव में ही मेधा पाटकर वगैरह ने मिलकर कुछ सीटो पर चुनाव लडने की योजना बनाई थी जो सर्वोदय के इन्कार के बाद परवान नही चढ सकी।

विदेशों से धन लेकर भारत में संस्था या संगठन चलाने को मै गलत नही मानता क्योकि धन गलत नही गलत है उस धन को दने वाले का उददेश्य यदि वह धन शिक्षा स्वाथ्य जन कल्याण के विभिन्न कार्य सामाजिक उत्थान आदि के लिये लिया जाता है और उसी में खर्च किया जाता ह। तो मुझे ऐसे धन में काई बुराई नही दिखती भले ही मैं स्वयं ऐसे भी धन का पक्षधर नही। किन्तु यदि ऐसा धन भारत में वर्ग संघर्ष को मजबत करने के लिये या समाज व्यवस्था को कमजोर करने के उददेश्य से दिया और खर्च किया जाता है तो मै उसे ठीक नही समझता भले ही उसके विरोध में मेरी कोई सक्रियता बिल्कुल नही है। मेरा मानना है कि आज भारत में बडी मात्रा में ऐसा धन विदशों से आ रहा है जो भारत में सामाजिक पारिवारिक बिखराव को हवा दे रहा है। भारत में अनेक संगठन एन, जी, ओ, बनकर विदेशों से धन ले रहे है और विदेशो के इशारे पर भारत में धर्म, जाति, क्षेत्रीयता, लिंग, उम्र, आर्थीक स्थिति, उत्पादक–उपभोक्ता आदि के नाम पर वर्ग संघर्ष बढाने को ही समाज सुधार कह रहे है। भारत में कई संगठन, बंधुआ मजदुरी, बालश्रम, बाल–विवाह, महिला–उत्पीडन आदि के नाम पर विदेशी एजेन्ट की भूमिका में काम कर रहे है। ऐसे संगठनों का विरोध तो होना ही चाहिये ऐसे प्रयत्न समाज की समस्याओं का कोई समाधान न बताकर समस्याओं से लाभ उठाने का प्रयत्न करते है जो समाज के लिय घातक है।

मुझे न मेंधा पाटकर के विषय में ज्यादा जानकारी है न ही उसने संगठन के विषय में। वे विदेशो से धन लेती है। या नही यह खोजना मेरा विषय नही इसलिये मेरे कथन को मेधा पाटकर की ओर इशारा समझना उचित नही है। मैं ऐसे नितान्त व्यक्तिगत मामलों से दूर रहना ही उचित मानता हूँ।

प्रश्न – आप आर्थिक आधार पर वर्ग निर्माण के विरूद्ध है। दूसरी ओर आप श्रम शोषण मुक्ति अभियान शुरू कर रहे है। क्या यह अभियान श्रमजीवी बुद्धिजीवी का वर्ग भेद पैदा नही करेगा? क्या यह अभियान वर्ग संघर्ष की दिशा में नही जायेगा ?

उत्तर––लगता है कि आप इस बात को ठीक से समझ नही सके है। ज्ञान तत्व अंक 123 में श्रम शोषण और मुक्ति शीर्षक से मैने लिखा है कि श्रमजीवी व्यवस्था में भागीदार नही बन सकते यदि कोई आश्वासन भी दे तो गलत है परिवार व्यवस्था और स्थानीय व्यवस्था से उपर की व्यवस्था में तो श्रमजीवियों की भूमिका लगभग शून्य होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारा सारा सुझाव बुद्धिजीवियों के लिये है। श्रमजीवीयों के लिए नही आज बुद्धिजीवियो का नेतृत्व जिस तरह श्रम शोषण के नये नये तरीके अपना रहा है। उसके विरूद्ध बुद्धिजीवीयों मे ही एक गूट बनना चाहिये। क्योकि ऐसा प्रयत्न पूरी तरह अमानवीय भी है और पाप भी। हम मूकदर्शक बुद्धिजीवी ऐसे पाप में अप्रत्यक्ष भागीदार ही तो है। वर्ग संधर्ष हमेशा अधिकार वंचितों का अधिकार लेने की प्रेरणा देने से होता है। हम वैसा नही कर रहे है। हम अधिकार सम्पन्नों को अधिकार छोडने की प्रेरणा दे रहे हैं जो किसी भी स्थिति में वर्ग संघर्ष नही है।

हम लोगों ने निष्कर्ष निकाला है कि प्रवृत्ति ही वग निर्माण वर्ग संघर्ष का उपयुक्त आधार है। वर्ग निर्माण और वर्ग संघर्ष के अन्य सभी प्रयत्न प्रवृति प्रधान वर्ग संघर्ष मे बाधक होने से अनावश्यक भी है और हानिकरक भी। अभी ग्रामीणो गरीबों किसानों आदिवासिया अवर्णो तथा महिलाओं के अधिकारो की विशष चिन्ता करने की आवश्यकता है। क्योकि इन सबके स्वाभाविक विकास में अवरोध उत्पन्न हुआं है। दुर्भाग्य से धूतों ने शोषण के उददेश्य से अपने कार्य को समाज व्यवस्था का स्वरूप प्रदान करने में सफलता पा ली। परिणाम स्वरूप शरीफ लोग भी इन शोषितों की सहायता नहो कर सक। शरीफ लोगों का कर्तव्य था कि वे ऐसे धूतों के विरूद्ध आवाज का प्रतिनिधित्व करते। स्वामी दयानन्द ने ऐसी पहल को आगे बढने नही दिया। विशेषकर उन धूर्तो ने जो इन सबको वर्ग के रूप में संगठित करके समाज के दुसरे शरीफ लोगों का शोषण करना चाहते थे। और इन पिछडे लोगो को ढाल बनाकर रखना चाहते थे। हम चाहते ह कि स्वामी दयानन्द और गांधी मार्ग के शरीफ लोगों का धूर्त शोषकों के विरूद्ध संगठित करें और यह एकत्रीकरण प्रवृति के आधार पर हो आप पूरी तरह आश्वस्त रहें कि श्रमजीवी बुद्धिजीवी के बीच ध्रवीकरण करक वर्ग संघर्ष हमारा कभी भी न प्रयत्न रहा है न रहेगा। हम शरीफ बुद्धिजीवियों को शरीफ श्रमजीवियों के साथ जोडकर शोषण के विरूद्ध जनमत खडा कर लेगे।

प्रश्न– श्री अमर सिंह आर्य जयपूर राजस्थान।

आपके अंक 122 में पृष्ठ 23 पर ज्ञान और शिक्षा की श्रमजीवियों को अधिक आवश्यकता बताई दूसरी ओर पृष्ठ चौदह पर अपने शिक्षा पर बजट वृद्धि विरोध किया। दो विपरीत बातें आपने कह दी। कृप्या स्पष्ट करे।

श्रमिक की परिभाषा भी आपकी उलझी हुई है। सरकारी विभागों में काम करने वाला श्रमिक है या नही कल कारखाने में श्रम करने वाला श्रमिक है या नही।

अपने मनु के नारी पूज्य सम्बन्धी विचार को भी अतिवादी बताया जो उचित नही। जब तक नारी ज्ञान वान बुद्धिमान नही होगी तब तक समाज ठीक नही चल सकता।

आधुनिक भारत को विज्ञान विकास तकनीकी ज्ञान चाहिये जो विषय आप केन्द्र सरकार से बाहर कर रहे है। ऐसी स्थिति में तो ये सब विभाग पिछड जायेंग।

उत्तर—— 1. श्रमजीवियों को शिक्षा देना आवश्यक है। उसके लिये बजट का भी मैं विरोधी नही लेकिन श्रमजीवियों से टैक्स लेने का मैं विरोधी हूँ। चाहे वह टैक्स शिक्षा के लिये ही क्यों न लिया जायें। श्रमजीवो समाज का सबसे अधिक उपेक्षित वर्ग है। उसे या तो सहायता की आवश्यकता है या तटस्थता की। सहायता के नाम पर उस पर विभिन्न प्रकार के टैक्स लादने का आप और ईश्वर दयाल जी भले ही समर्थन करे। मैं नही कर सकता उनसे दस रूप्या टैक्स वसूल करके चार रूपया शिक्षा पर तीन रूपया सब्सीडी पर और तीन रूपया अपने ऐश आराम पर खर्च करना पूरी तरह अन्याय है इससे तो अच्छा है कि आप उनसे टैक्स लगाकर शिक्षा पर व्यय श्रम शोषण है। और कुछ नही। मैं इस बात पर स्पष्ट हूँ कि शिक्षा श्रमजीवियों के विकास का मार्ग है मूल आवश्यकता नही। रोटी, कपडा, दवा, साइकिल, उसकी मूल आवश्यकता है। मूल का शोषण करके विकास की वकालत करना मुझे अच्छा नही लगा।

भारत की यह खास विशेषता है कि यदि किसी वर्ग को विशेष सुविधा मिलने लगे तो दुसरे वर्ग के लोग उसमें घुसपैठ करने का मार्ग खोजने लगते है। जब समाज में सवर्णो को अधिक सम्मान प्राप्त था तो कई बार अवर्ण भी सवर्ण बनने का प्रयास करते थे और अब जब अवर्णो को अधिक सुविधाए मिलने लगी तो सवर्ण भी अवर्णो में घुसपैठ का प्रयास कर रहे है जब बुद्धि का मूल्य तेजी से बढा है तो श्रमजीवी भी स्वयं को बुद्धिजीवी बनने के लिये प्रयत्नशील है। दूसरी ओर हम लोगो ने श्रम मूल्य वृद्धि की आवाज बुलंद की तो बुद्धिजीवी अपने साथ श्रम शब्द जोडकर श्रम जीवियों को मिलने वाले लाभ में घुसपैठ की चर्चा कर रहे है। शारीरिक श्रम और बोद्धिक श्रम की एक साधारण पहचान है कि श्रम के अधिकतम मूल्य से अधिक जो भी मिलता है, वह सब बुद्धि का मूल्य है शारीरिक श्रम का औसत मूल्य अभी साठ रूपये से कम ओर अधिकतम सौ या एक सौ बीस के आसपास है यह अधिकतम मूल्य भी कही कही ही मिल पाता है। इसका मतलब यह हुआ कि यदि इससे अधिक किसी को मूल्य मिले तो वह बुद्धि का है श्रम का नही। आफिस में काम करने वाला चपरासी श्रम प्रधान नही माना जाना चाहियें।

इस संबंध में मेरा आपसे निवेदन है कि शाब्दिक तर्क में यदि मेरे विचार उलझे हुए भी हो तो भी है वे साठ रूपया से कम पर भी श्रम के लिये मजबूर लोगो के पक्ष में। आपके विचार भले ही तार्किक कसौटी पर सुलझे हुए हो लेकिन है सौ रूपया से अधिक पा रहे लोगों के पक्ष में। हमें अपने तर्क प्रस्तुत करने में मानवीय पक्ष को सुझाव दे ंतो मैं अपने श्रम सबंधी विचारों में सुधार करने के लिए तैयांर ह्।

मेरे विचार में समाज की स्त्री और पुरूष रूपी दो वर्गो का संघ न है न होना चाहिए। स्त्री और पूरूष का पृथक वर्ग विभाजन परिवार तक सीमित है उसके बाद नही। यदि परिवार के बाद भी स्त्रियों का वर्ग विभाजन रहता है तो वह परिवार व्यवस्था को कमजोर करेगा। समाज में स्त्री और पुरूष को सिर्फ व्यक्ति के रूप में स्वीकार करना चाहिये। पुराने समय से ही महिलाओं को समान अधिकार न मिलने से कुछ विसंगतियाँ पैदा हुई जिसके लिये मनू जी ने व्यवस्था दी। इस व्यवस्था में महिला और पुरूष को समाज में दो वर्गो के रूप में मान्यता मिली। हो सकता है कि उस समय आवश्यक भी हो किन्तु आज मनु क वाक्य के आधार पर महिलाओं को न तो समान अधिकार से वंचित रखना उचित है न ही उन्हे वर्ग के रूप में स्वीकार करके विशेष अधिकार उचित है। महिलाओं को वर्तमान समय में वर्ग मानकर जो आंदोलन हो रहे है वे घातक है।

हमारी योजना में सरकार के दो भाग होगे। पुलिस, सेना, न्याय, वित्त और विदेश एक भाग मे होगे और अन्य सभो विभाग दूसरे भाग में। विज्ञान, तकनीकी, ज्ञान, विकास, शिक्षा, स्वास्थ, रेल, डाक आदि को यदि सेना पुलिस से अलग कर दे तो क्या अंतर आ जायगा। यह मेरी समझ से बाहर है। अभी सब विभाग एक जगह होने से राजनीति बेलगाम और उच्श्रृखल हुई है। पांच विभाग छोडकर शेष सभी विभाग समाज सरकार क पास होगे जिसकी शाखाएँ केन्द्र से गांव तक रहेंगी। इस व्यवस्था से सुरक्षा और विकास का घालमेल न होकर दोनो पृथक पथक काम करेगें। मैं नही समझ सका कि आप सेना पुलिस और विज्ञान को एक ही जगह से संचालित क्यों करना चाहते है। यदि ये दो जगह से संचालित हो तो समाज पर क्या बुरा प्रभाव पडेगा।

प्रश्न—— श्री महावीर त्यागी, आश्रम पटटी, कल्याण, पानीपत, हरियाणा आप अब तक अहिंसक तरीके से सत्ता की व्यवस्था में बदलाव पर दृढ रहे ह, यह खुशी की बात है। बजरंगलाल अग्रवाल से बजरंगमुनि बन जाने से तो और अच्छा हुआ कि जाति सूचक नाम से मुक्ति मिली। मुनि होने के बाद भी आपकी मानवतावादी विचारधारा में कमी का तो कोई कारण दिखता नही।

अपनों से अपनी बात में आपने स्पष्ट रूप से तथा दिल खोलकर मन की बात रखी यह आपका बडप्पन है। मैं इसे अच्छी प्रक्रिया मानता हूँ। आपस में बिना लाग लपेट के खुले सवाद से संबंध सुधरते ही है विगडते नहीं, यदि इक्के दुक्के लोग आपको संघ का भी मानें ता आपको इससे विचलित नही होना चाहियें। क्योकि सब जगह सब तरह के लोग होते है। मेरे विचार में सभी संस्थाएँ अपने बुढापे की अवस्था से गुजर रही है। इन्हें दूसरों की सक्रियता सुहाती नहीं है। क्योकि ये स्वयं तो निष्क्रिय है ही, दूसरों की भी पूँछ पकडकर खीचत रहते है। आप अहिंसक तरीके से शासन मुक्ति शोषण मुक्ति की दिशा में निधडक बढते रहे यही मेरी कामना है।

प्रश्न—— श्री सुरेश जैन कोठी न.–28 सेक्टर –29 फरीदाबाद हरियाणा। मैं एन सी ई आर टी में पिछले 35 वर्षा से कार्यरत हूँ। एवं विद्यालय शिक्षा सुधार कार्य से जुडा हुआ हूँ। विश्व के करीब 20 देशों का भ्रमण अध्ययन, अध्यापन, एवं संगोष्ठियों में भाग लेने क सम्बंध में पिछले 30 वर्षो से आना जाना रहां अपने यहाँ के कार्यो से मै बहुत ही असंतुष्ट हूँ।

मैं पिछले 8–10 वर्षो से आपके विचारों से जुडा हुॅ। अजमेर मोहनराज भंडारी पत्रकार द्वारा आपका पता चला था। मै ज्ञान तत्व एवं आपके अन्य प्रकाशनों को ध्यानपूर्णक पढता हूं। पिछले 50 वर्षो से शिक्षा सुधार के नाम पर किये जाने वाले कार्यो से समस्यायें बढी है एवं शिक्षा अपने मूल उददेश्यों में सभी स्तरों पर असफल रही है। जिन्हे समाज में बढती हुयी समस्याओं के रूप में भी देखा जा सकता है। कृपया शिक्षा खासकर विद्यालय शिक्षा के प्रारूप पर प्रकाश डाले।

उत्तर ——सामाजिक प्रगति में दो बातो का समन्वय होता है। 1. व्यक्ति की प्रतिस्पर्धा 2. समाज की काफिला पद्धति। प्रतिस्पर्धा पद्धति में प्रत्येक व्यक्ति को समाज द्वारा बनाये गये कुछ नियमों के अन्तर्गत किसी भी सीमा तक आगे बढने की स्वतंत्रता है, किन्तु काफिला पद्धति में कमजोर से कमजोर व्यक्ति को भी विशेष परिस्थितियों को छोडकर सामान्यतया साथ लेकर चलने की मजबुरी है। दोनो का समन्वय ही आदर्श व्यवस्था है। पश्चिम काफिला पद्धति से बहुत दूर है और साम्यवाद प्रतिस्पर्धा से बहुत दूर है। भारत में नब्बे के पूर्व तो कोई विकास का मॉडल ही नहो था। नब्बे के बाद भारत प्रतिस्पर्धा पद्धति पर सरपट दौड लगा रहा है।

प्रतिस्पर्धा पद्धति के मॉडल में शिक्षा का विशेष महत्व है। शिक्षित व्यक्ति स्वयं अपने परिवार के और राष्ट के भौतिक विकास में अशिक्षितों की अपेक्षा निश्चित रूप से अधिक सफल हाता है किन्तु शिक्षा सामाजिक व्यवस्था और न्याय में साधक न होकर बाधक हो रही है। शिक्षा का चरित्र पर कोइ प्रभाव नही पडता। शिक्षा क्षमता विकास मे सहायक होती है। यदि कोई डाकू प्रवृति का व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त होगा तो अधिक सफाई से डाका डालेगा। और सिपाही प्रवृति का शिक्षित व्यक्ति अधिक सफलता से डाकू को पकडेगा। शिक्षा एंक शस्त्र है जो उपयोग करने वाले पर निर्भर है कि उपयोग कितना सामाजिक है कितना समाज विरोधी। शिक्षा विस्तार ने भारत को विश्व व्यवस्था में नई उँचाईयों तक पहुँचाया है। किन्तु इसके साथ साथ भारत में भ्रष्टाचार, चरित्र पतन तथा अनेक आपराधिक घटनाओं में लगातार वृद्धि के दुष्परिणामों में भी शिक्षा को भूमिका स इन्कार नही किया जा सकता। यह शिक्षा का ही प्रभाव है कि शिक्षित लोगों ने श्रम शोषण क नये नये तरीके भी खोज लिये और अशिक्षित श्रमजीवियों को यह भी आभास करा दिया कि ये सिद्धान्त ही उनके लिये उपयोगी है।

मैनें लिखा कि शिक्षा, न्याय और काफिला पद्धति में बाधक है। शिक्षा सिर्फ आगे ही आगे देखने का मार्ग प्रशस्त करती है, पीछे मुडकर देखने की प्रवृति नही। प्रवृति बनती है। जन्म पूर्व के संस्कार पारिवारिक वातावरण और सामाजिक परिवेश से और इन तीन के प्रभाव से जो प्रवृति बनती है। उसे विस्तार मिलता है शिक्षा से। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि हमन परिवार व्यवस्था की भी कभी चिन्ता नही कि और सामाजिक परिवेश पर भी ध्यान नही दिया। परिणाम स्वरूप प्रवृति तो बिगडती गई और शिक्षा उक्त दुष्प्रवृति में विस्तार करती गई।

आज हर सामाजिक धार्मिक प्रमुख भी शिक्षा की सच्चाईयों पर चर्चा करने की अपेक्षा शिक्षा के तरीके की ही आलोचना करता है। कोई मैकाले को दोष देता है तो कोई किसी और को। किन्तु आज तक कोई किसी तरह की आदर्श प्रणाली बता नही सका क्योकि शिक्षा स्वयं में आदर्श प्रभाव डाल ही नही सकती। शिक्षा खेत का बीज नही है। शिक्षा तो खाद पानी है और उसे उसी रूप में देखने की जरूरत है। खाद पानी से बीज नही बदल सकता। महाभारत काल में एक ही गुरू और एक समान शिक्षा दुर्योधन और युधिष्ठिर में एक समान परिणाम नही दे सकी तो आज को शिक्षा से तो वैसी उम्मीद ही व्यर्थ है।

मैं पूरी तरह आवश्वस्त हूॅ कि शिक्षा के जोर परिणाम संभव है शिक्षा उसमें पूर्ण सफल है। किन्तु हम जो अन्य परिणाम चाहते है वह शिक्षा का विषय न होकर प्रवृति का विषय है और प्रवृति में सुधार के लिये हम शिक्षा पर निर्भर न रहकर पारिवारिक वातावरण और सामाजिक परिवेश पर अधिक ध्यान दे तो ऐसी आदर्श प्रवृति को शिक्षा अपने आप विस्तार द देगी। अतं में मेरा सुझाव यह है कि शिक्षा विस्तार से अपराध नियंत्रण को जोडने का प्रयत्न छोडकर समाज व्यवस्था को ठीक करने का प्रयास करे।

प्रश्न – श्री विनय अग्रवाल, रावर्टसगंज, सोनभद्र उत्तर प्रदेश ।

आप ग्राम पंचायतो को और अधिकार सम्पन्न बनाने की बात कह रहे है। सुनने में तो यह बात बहुत अच्छी लगती है। किन्तु पिछले कुछ वर्षा में ग्राम पंचायतों के अधिकारो में कुछ वृद्धि हुई है। जिसके परिणाम बहुत ही बुरे रहे है। सरपंच भ्रष्टाचार के अडडे बन गये है। दादागिरी भी इस सीमा तक बढ गई है कि आश्चर्य हो रहा है सरपंच का अधिकार मिलते ही किस तरह अपराधियों का गिरोह बन रहा है। यह आप पूरे भारत में देख सकते है। यदि और कही न भी हो यू पी के गावों में तो आपको हर जगह मिल ही जायेगा। जब आंशिक अधिकार मिलने पर स्थिति ऐसी है तो पूरे अधिकार मिलने पर स्थिति कैसी होगी ?

उत्तर —— अधिकार और पावर मिलने पर भ्रष्टाचार और दादागिरी का बढना आम बात हो गई है। यह पावर चाहे सरपंच के पास बढे अथवा मुख्य मंत्री के पास। मैं पावर कही भी इकटठा होने के विरूद्ध हूॅ। अभी सरकार के पावर कुछ कम करके सरपंचों के बढाये गये। मैं ऐसा नही कहता मैं

तो यह कह रहा हूँ कि सरकार क पावर कम करके यह सबमें बांट दिया जाय अर्थात परिवार, गांव, जिला, प्रदेश केन्द्र में बंट जावे। अभी सरकार पंचायतों को पावर देती है, धन देती है और निरीक्षण करती है। आर्थात सरपंच सरकार के एजेन्ट के रूप में काम करता है मेरा सुझाव है कि सरकार ओर संरपच को पावर दे न ही धन पंचायत को पावर भी उस गांव के लोग दे ओर धन भी गांव के लोग ही नियंत्रण भी करे। उदाहरण स्वरूप अभी गांव का स्कूल सरपंच बनवायेगा और वही व्यवस्था भी करेगा। नई व्यवस्था में यदि गावं के लोग सरपंच या पंचायत से स्कूल को व्यवस्था चाहेगें तो धन की व्यवस्था करके उन्हें यह काम सौपेगें अन्यथा स्कूल की कोई और व्यवस्था करेगे। नई व्यवस्था में सरकार के पावर तो कम होगे ही पंचायतो के भी पावर कम हो जायंगें और ज्यादा पावर व्यक्ति या परिवार के पास हा जायगा। अभी हमने शराब बन्दी का पावर सरपंच या ग्राम पंचायत को दिया तो दुरूपयोंग होगा ही। नई व्यवस्था में गांव कें लोग मिलकर यह पावर पंचायत को देना चाहें तो दे सकते है। और न चाहे तो शराब बन्दी का पावर वे अपने पास रख सकते है।

एक बात और है कि यदि सरपंच के पावर बढने से सरपंच द्वारा अत्याचार करने का खतरा है तो ऐसा पावर यदि मुख्यमंत्री का होगा तो यह खतरा और भी बढ जाता है। और यदि सारा पावर प्रधानमंत्री को दे दे तो खतरा और भी बढ जाता है। पावर के उपर जाने से अत्याचार का खतरा बढता है कम नही होता। आंख बद कर लेने से सामने की वस्तु दिखनी बंद हो जाती है। पर उसका अस्तित्व समाप्त नही होता । गांव का सरंपच जितना भ्रष्टाचार करता है। यदि वह सारा काम छीनकर उपर दे दे तो भ्रष्टाचार तो सरपंच से अधिक ही होगा किन्तु न हमें अनुभव होगा न दिखेगा इसलिये जैसा अब तक चल रहा है इसका समाधान तो करना ही होगा। और वह समाधान सिफ विकेन्दोयकरण ही है। और कोई दूसरा नही वह विकेन्दोयकरण भी ठीक से काम तभी कर पायगा। जब नीचे से उपर बढेगा। उपर से नीचे पावर जाने से तो आंशिक ही लाभ संभव है।

प्रश्न–श्री कृष्ण कुमार सोमानी, बम्बई, महाराष्ट्र।

(क) आपने मेरे एक प्रशन के उत्तर में लिखा था कि निर्वाचित प्रतिनिधि की वापसी की प्रकिया पर बाद में विचार किया जायगा। अभी तो हम राज्य द्वारा इस मांग को सिद्धान्त रूप से सहमत होने की मांग कर रहे है। दूसरी ओर 122 में कृष्ण कुमार खन्ना जी के उत्तर में आपने लिखा कि बिना सुझाव के मांग प्रस्तुत करना कभी भी मेरा स्वभाव नही रहा। क्या आपके दोनो कथन विरोधाभासी नही है?

(ख) अंक 123 में आपने लिखा कि बिना गंभीर चिन्तन के न सत्य और न असत्य को पृथक पृथक करना संभव है न सक्रियता की विपरीत धाराओं में उपयोगी अनुपयोगी का ठीक ठीक चयन। इसके अभाव में परिणाम शून्य ही होंता है।

लगता है कि अभी आपका चिन्तन अधूरा ही है। आप भष्टाचार दूर करने की बात करते है किन्तु वर्तमान चुनाव प्रणाली बदलने के विषय में चुप रहते है आप भारत की ग्यारह समस्याओं पर बहुत प्रकाश डालते है। किन्तु इन सब समस्याओं की जड मैकाले शिक्षा पद्वति पर कोई प्रकाश नहो डालते। मेरे विचार में ग्यारह समास्याओं के मूलभूत कारण तीन है––

1.राजनैतिक– इसमें चुनाव पद्धति, दलीय राजनीति और अनियंत्रित शक्ति सम्पन्न संसदीय लोक तंत्र कारण है।

2.आर्थिक– इसमें अनियंत्रित पूँजीवाद मुख्य कारण है।

3.धार्मिक– धर्म के दस लक्षणों का व्यापक प्रसार न होना पूजा पद्धति को धर्म मानना और अपने सम्प्रदाय के संख्यात्मक विस्तार के प्रयत्नो में विचार प्रसार के अतिरिक्त उपायों का समावेश आदि मुख्य कारण है।

आप परिवर्तन का प्रयत्न कर रहे है किन्तु लक्ष्य स्पष्ट न होने से सफलता संदिग्ध है। आप चुनाव सुधार और पंचायती राज पर ज्यादा जोर दे तो अधिक अच्छा होगा।

उत्तर – प्रतिनिधि वापसी का अधिकार मेरी मांग है । लोकतंत्र को लोक नियुक्त तंत्र से बदलकर लोक नियंत्रित तंत्र करना। प्रतिनिधि वापसी उस मांग में एक सुझाव है इस सुझाव के लिये मैन शासन को कई विकल्प सुझाये है। जो ज्ञान तत्व में कई बार प्रकाशित हुए है। जिसमें––

1. उस लोकसभा क्षेत्र में आने वाले एक चौथाई ब्लाक चेयरमैन की मांग हो तो सभी पंच सरपंच वोट करे।
2. लोकसभा चुनाव के साथ ही एक और मतदाता परिषद बना दी जावे जो मतदान करे। यह परिषद दस हजार से लेकर पचास हजार तक की हो सकती है।
3. लोकसभा क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले जिला परिषद वोट करके प्रस्ताव पारित करे।
4. कोई अन्य मार्ग जो उचित हो।

मैने इन उपसुझावों को अभी बहस के लिये खुला छोड रखा है। वैसे भारत क प्रस्तावित संविधान का अनुच्छेद चौवन 54 इस संबंध में बिल्कुल स्पष्ट है किन्तु वह अभी हमारा अंतिम सुझाव नही है क्योकि वर्ष दो हजार आठ के सितम्बर में लोक संविधान सभा इस मुददे पर और विचार करेगी।

मैने कभी नही कहा कि मेरा चिन्तन पूरा हो गया है। मैं तो सदा ही यह मानता हूँ कि अभी बहुत चिन्तन करने की आवश्यकता है। अनेक मुददे ऐसे है जिनमें आप गलत हो सकते है और मैं ठीक अनेक मुददे ऐसे है जिनमें आप ठीक हो सकते है। मैं गलत इसलिये मंथन की प्रकिया जारी रहनी चाहियें। आपने अभी समस्याओं का कारण मैकाले की शिक्षा पद्धति को बताया किन्तु मैकाले भिन्न किसी शिक्षा पद्धति का आज तक किसी ने कोई स्वरूप नही बताया है, आप ने भी नही चरित्र की शिक्षा दी जाय यह कहना पर्याप्त नही है। चरित्र की शिक्षा देने वालो का चयन संसद करेगी या मतदाता या कोई और चरित्र की शिक्षा देने वालों का चयन संसद करेगी या मतादाता या कोई और चरित्र की शिक्षा का प्रारूप कौन तय करेगा यदि शिक्षा शास्त्री करेगे तो शिक्षा शास्त्री कौन है, यह चयन कैसे होगा? आदि प्रश्नों को साथ में हल करना होगा।

आपने तीन सुझाव दिये है। तीनो से मेरी सहमति है मामूली अंतर है मेरा प्रस्ताव यह है –

1. कुल विभागों में से सेना वित्त विदेश न्याय पुलिस ये पाच विभाग मात्र संसद को देकर बाकी सभी विभाग परिवार क्षेत्र जिला प्रदेश और केन्द्र सभाओ में बंट जावे। इन सबका चुनाव क्रमश नीचे से उपर की ओर हो जैसा अपका सुझाव है।
2. परिवार से केन्द्र तक के अधिकारों में शासन या संसद या कार्यपालिका, न्यायपालिका, विधायिका का कोई हस्तक्षेप तब तक न हो जब तक कोई इकाई किसी अन्य के अधिकारों का उल्लघन न करे।
3. धर्म को धर्म रहने दे सम्प्रदाय न बनने दे।

मुझे नहो लगता कि आपके सुझावों से केाई बहुत भिन्न बात मैने कही है।

श्री दुर्गा प्रसाद जी आर्य मंत्री मध्य प्रदेश सर्वोदय मंडल टीकमगढ मध्य प्रदेश।

आदरणीय दुबे जी सादर जगत आपका भेजा श्रम शोषण मुक्ति अभियान का पत्र और सदस्यता पत्र मिला। इसके लिये आपका आभारी ह। आपने लिखा है कि किसानों मजदूरों के श्रम का शोषण हो रहा है, बेरोजगारी दिन प्रतिदिन बढ रही है किसानो की उपज की लागत मुल्य न मिलने के कारण किसान आत्महात्या कर रहे है। गरीबी अमीरी की खाई चौडी हो गई। जिस डीजल ओर बिजली की मूल्य वृद्धि की मांग शासन से कर रहे है। अगर सरकार ने आप सबकी मांग स्वीकार कर डीजल और बिजली की मूल्य वृद्धि कर दी तो देश क सभी किसानो को आत्महत्या के लिये सोचना नही, बल्कि आत्महत्या करनी पडेगीं अनाज दालें खाद्य तेल बन उपज पश चारा को भरपूर नही बल्कि लाभकारी मूल्य मिलना चाहिय। जो आज नही मिल रहा है, इसलिये किसान कर्जे में फँसकर आत्महत्या कर रहा है। किसान मजदूरो को जीवन भत्ते कि भीख नही चाहिए सरकारों द्वारा और बहुराष्टीय कम्पनियों द्वारा जो रोजगार 16 वर्षो में छीन लिये गये है उनकों उद्योग में फिर से लगा दिया जाय तो यह बेरोजगारी खत्म हो जायेगी। इस मुददों पर आप लोगों से चर्चा हो सकती है। चाहे सेवाग्राम बैठक करे या दिल्ली में बहुत सी बातों मे श्री बजरंगमुनि के विचारों से बुनियादी मतभेद है वे अपने विचारो के अलावा किसी की बात का सूनना नही चाहते।

हम लोग व्यवस्था परिवर्तन के प्रबल समर्थक है, सर्वोदय में कोई कटटरवादी है, यह सोच भी गलत है। सभी सर्वोदयी सत्य अहिंसा प्रेम में विश्वास भी करते है। और आचरण भी। खादी गामोद्योग रचनात्मक कामों से जिनके पास सभी समस्याओं का हल ह। सब लोग उनके भाषण को सूने अपनी बात कोई रखे नही यह कैसे सम्भव है। खादी का विचार ग्राहय नही वह श्रम की वकालत करे। यह बात मेरी समझ के बाहर है। श्री बजरंगमुनि के विचारों से पिछले 15 वर्षो से परिचित हूँ। मै कई बातों में मेरे उनके मतभेद है। वे मानते नही इसलिये वे एक साथ काम करना सम्भव नही हो पाता। बुनियादी समस्याओं और संकटो पर ध्यान रख काम करना हम सबका धर्म है। श्री मुनि जी हमारे अच्छे मित्र है विचारो सोच में मतभेद है।

उत्तर–– आपका पत्र मिला श्रम शोषण मुक्ति अभियान ने निष्कर्ष निकाला है कि सभी प्रकार की श्रम उत्पादित श्रामिक उपभोगी वस्तुओं को कर मुक्त करने श्रम मूल्य वर्ष भर 100 रूपये प्रतिदिन तक की श्रम की मांग बढने और गरीबी रेखा के नीचे वालों को चार सौ रूपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह का जीवन भत्ता देने की व्यवस्था की जाय और इसके लिये आवश्यकतानुसार कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि की जा सकती है या की जायं। हमारी माग के बदले मैं आपका कथन है कि ऐसी व्यवस्था से तो किसान मजदूर और परेशान हो जायेगा। मुझे आपकी बात समझ में नही आई क्या बिजली डीजल पेटोल को निः शुल्क करके सारा टेक्स कृषि उत्पादन पर बढा देने से किसान की हालत सुधर जायगा मैं यह नही समझा की आपकी दृष्टि में मानवीय श्रम और बैलों से कृषि करन वाले किसान को इससे लाभ कैसे होगा। आज भी भारत में लगभग साठ प्रतिशत किसान बिना कत्रिम उर्जा की मदद के खेती करते है। इनके उत्पादन पर भले ही कर लगे किन्तु 40 प्रतिशत कृत्रिम उर्जा वाले किसानों को अधिक से अधिक सस्ती उर्जा मिले इस तर्क को आप और स्पष्ट करिये। गरीबी रेखा के नीचे जीवन जीने वालो को जीवन भत्ता रूपी भीख चाहिये या नही यह बात उनसे पूछनी आवश्यक है। और मैने उनसे पूछा है दुर्भाग्य है कि साठ प्रतिशत किसाना की समस्याओं की समस्याओं के समाधान का प्रतिनिधित्व चालीस प्रतिशत उपर वाले किसान कर रहे है जिसमें साठ प्रतिशत की आवाज शामिल ही नही है, कर रहे है, और गरीबी रेखा के नीचे वालों की आवश्यकताओं का उत्तर भी गरीबी रेखा से उपर वाले दे रहे है। बहुराष्टोय कम्पनियाँ द्वारा ग्रामीण उद्योगों के शोषण की शुरूआत तो उसी दिन हो गई जिस दिन गांधी की ग्रामीण श्रम प्रधान संस्कृति को किनारे करके नेहरूवादी ने संस्कृति ने औद्योगिकरण को विकास की मुख्य धारा मान लिया। नेहरूवादियों ने औद्योगीकरण के विस्तार के लिये कृत्रिम उर्जा को मंहगा करने से लगातार परहेज किया और औद्योगीकरण का

पेट भरने की आवश्यकता की पूर्ति के लिये ग्रामीण उत्पादन तक पर कर लगाने से परहेज नही कियां। सन 50 से ही भारतीय शहरी उद्योग को निगलते गये और उसका लाभ उठान वाले प्रसन्न होते रहे। अब सोलह वर्षा से उन लोगों को निगलने वाली बहुराष्टोय कम्पनियाँ आ गई है, तब इन सबको स्वदेशी आंदोलन की याद आई है।

एक सीधा सा सिद्धान्त है कि आवागमन जिताना सस्ता होगा उतना ही उद्योग के केन्दोयकरण में सहायक होगा। यदि आवागमन निः शुल्क हो जाय तो आर अधिक सुविधाजनक तरीके से कच्चा माल मशीनों मे जायगा और फिर तैयार होकर ग्रामीण उपभोक्ता तब तक भी पहुँचने में अधिक सुविधा होगी। यदि बहुराष्टोय कम्पनियॉ बंद हो जावें तो भारतीय कम्पनियों को तो लाभ होगा, जिसकी जूठन गांठ तक शायद चली जाये किन्तु यदि कृत्रिम उर्जा का मूल्य बढा तो अपने आप ग्रामीण उद्योग पनपेगे जिसकी जूठन भारत क बडे उद्योग तक जायगी और विदेशी कम्पनीयाँ तो बंद ही हो जायेगी। क्योकि उनका लागत मूल्य भी बढेगा और आवागमन औद्योगिक नीति की राह पकडी उस सम्पूर्ण नोति पर विचार करने कि आवश्यकता है न कि 90 के पूर्व और 90 के बाद को अलग अलग करके स्वदेशी का अर्थ भारतीय नही स्थानीय की दिशा में मोडने की आवश्यकता थी और है अब भी इस मुददे पर और विचार मंथन की आवश्यकता है जिसके लिये आपकी सहमति से मुझे खुशी हुई है।

13 / 1 / 127 उत्तरार्ध

————

श्रम बुद्धि, धन

2.1.07 को ज्ञान यज्ञ मंडल की मासिक गोष्ठी में उपरोक्त विषय पर खुली चर्चा हुई। इस सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बिन्दुओं की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है।

मनुष्य दो तत्वों से मिलकर बना है। शरीर और जीवन। जो प्रत्यक्ष दिखाई देते है। इनमें शरीर पंाच भौतिक तत्वों की समीक्षा है तथा जीवन जो परिलक्षित होता है। अत जहां शरीर की कुछ भौतिक आवश्यकतायें है। जैसे रोटी, कपडा, मकान आदि वहां जीवन सम्बन्धी आध्यात्मिक एवं सामाजिक आवश्यकतायें है। जिनकी पूर्ति हेतु श्रम बुद्धि एवं धन (पूँजी) आय के स्त्रोत (साधन) माने जाते है।

वास्तव में हमारी शारीरिक आवश्यकतायें निश्चित है। परन्तु दूसरी ओर जीवन की आवश्यकतायें अत्यधिक एवं अनिश्चित है। क्योंकि स्वयं अपने परिवार एवं समाज के विकास एवं प्रगति हेतु कर्तव्य स्वरूप अनेक प्रकार की आवश्यकतायें उत्पन्न होती रहती है। जिनकी पूर्ति हम तभी कर सकते है। जबकि हमारी शारीरिक आवश्यकतायें बहुत कम एवं निश्चित हो से मनुष्य अस्वस्थ एवं रोग का शिकर होगा ओर उसको सुख व शान्ति से भी वंचित रहना होगा।

सृष्टि का आदि मानव पशुओं की भांति अविकसित होने के कारण वन जंगल में घूम फिर कर व कंदमूल फल खाकर प्राकृत जीवन जीता था एवं सुरक्षा हेतु अपने कवीला (समुह) में मिल जुलकर रहता था। पूर्वोत्तर वैदिक काल में उसको औषधियों व वनस्पतियों का ज्ञान हुआ और उसने कृषि युग में पदार्पण किया जिसके करण वह एक स्थान पर गाँव स्थापित करक मिलजुल कर रहने लगा। विशेष तौर पर भारत में सांस्कृतिक विकास करके मनुष्य प्राकृत जीवन से निकलकर सुसंस्कृत जीवन व्यतीव करने लगा।

उस समय मनुष्य ने शरीर व जीवन की आवश्यकताओं को ठीक प्रकार समझकर कृषि द्वारा उत्पादक श्रम एवं बौद्धिक विकास तो हुए समृद्धिशाली जीवन व्यतीत किया तथा वह भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर हुआ। उत्पादक श्रम द्वारा जहाँ भौतिक समृद्धि उत्पन्न होती है वहाँ बुद्धि द्वारा आत्मिक ज्ञान प्राप्त करके जीवन विकसित होता है। इस प्रकार गीता के अनुसार साम्यवस्था प्राप्त करके मनुष्य सच्ची सुख शान्ति का अनुभव करता है।

कृषि उत्पादक कार्य के लिये जहाँ शारीरिक श्रम की आवश्यकता होती है। वहाँ बौद्धिक ज्ञान की उपयोगिता भी अपेक्षित है तथा कृषि यंत्रों व गाय– बैलों की उपलब्धता हेतु लघु पूँजी की जरूरत है। कृषि कार्य के साथ–साथ उसके सहायक लघु उद्योगों का पक्षधर व स्थापित होना स्वाभाविक है। इस प्रकार श्रम, बुद्धि व पूँजी के परस्पर योगदान द्वारा मनुष्य का जीवन विकसित व आनदित हुआ। ईश्वर प्रकृति ने मनुष्य के शरीर व जीवन में सभी आवश्यक गुणों का समावेश करके पूर्णता प्रदान की। कृषि कार्य मनुष्य के जीवन यापन की सर्वश्रेष्ठ पद्धति के रूप में पायी जाती है।

तत्पश्चात् विकास के क्रम में वैज्ञानिक युग में बडे बडे कल कारखाने (भारी उद्योग) स्थापित हुये। जिनका कृषि से उत्पन्न पूँजी के बल पर विकास हुआ और वहाँ से श्रम व बुद्धि का शोषण प्रारम्भ हो गया। और एक प्रकार से मिल मालिक व बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा श्रम बुद्धिजीवियो ने (विशेष तौर पर राजनैतिक एवं धार्मिक श्रेताओं द्वारा) श्रम जीवियों का हर प्रकार से शोषण किया जाने लगा। आज कृषि कार्य को

अकुशल कार्य का दर्जा देकर जहां उसके साथ घोर अन्याय किया जा रहा है। वहाँ सरकार द्वारा कृषि कार्य को लाभ का धंधा घोषित कर दिया गया है। जिससे पूँजीपतियों द्वारा पैसे के बल पर कृषि उद्योग पर कब्जा करके कृषक वर्ग को मजदूर वर्ग में परिवर्तित कर दिया जाय।

अतः अब वह दिन दूर नही जबकि भारत में खेतो किसानी के प्राचीन शुद्ध धधे को नष्ट करके पूँजीपतियों द्वारा बडे–बडे फार्म हाउस बनेंग और श्रमजीतियों के शोषण द्वारा अनुचित लाभ कमाकर दूसरे मुल्कों में भेजा जायेगा।

यदि कृषि किसानों व श्रम शोषण को बचाना है। तो श्रम शोषण मुक्ति आंदोलन को तेज करना होगा वरना मुख्य बात भारतीय संस्कृति जो कि कृषि एवं श्रमाधारित है। समाप्त हो जावेगी।

आज हम अज्ञानता के कारण मोह माया के लोभ में फंसकर अपने पैरों में ही कुल्हाडी मार रहे है। हमें जीवन मुल्यों को समझकर शारीरिक आसत्ति को छोडना होगा। अमीरी–गरीबी के फंडे को काटकर समृद्धि के मध्यस्थ दर्शन को अपनाना होगा। वर्तमान व्यवस्था को बदलने हेतु स्वंय अपने हित में बुद्धिजीवियों एवं पुजिपतियों को अपनी भुल सुधार करके आगे आना तथा ट्रस्टीशिप की भावना से प्रकृति के सभी अंगों के तब तक शोषण विहिन एवं न्यायपूर्ण समाज की स्थापना नही की जा सकेगी। केवल बुद्धि एवं पूँजी के बल पर जीवन–यापन करना अन्याय एवं अज्ञानता को सूचक है।

आज भोगवादी जीवन–शैली के कारण समाज में अनेक समस्यायें एवं रोग उत्पन्न हो रहे है। जिनका निदान समझदारी एवं समाधान पूर्वक जीवन यापन करना है, क्योंकि समस्या एव नासमझदारी ही दुख है। और समाधान और समझदारी ही सुख। प्रत्येक मानव जीवन का लक्ष्य सुख व शांति प्राप्त करना है। अतः मनुष्य को स्वय विचार एवं खोज करनी होगी जिससे वह जोवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सके।
मेरे विचार से श्रम शोषण मुक्ति अभियान का भी यही लक्ष्य है।

सब सुधरेगा तीन सुधारे नेता,कर,कानून,हमारे।।

कृत्रिम उर्जा सस्ती हो,
यह बहुत बडा षडयंत्र है।
श्रम का शोधण करने का
यह पूँजीवादी मंत्र है।।

हमरा महत्वपूर्ण साहित्य

1.ज्ञान तत्व मंथन	8 रूपये,
2.भारत का प्रस्तावित संविधान	3 रूपये,
3.हमारे सपनों का भारत	5 रूपेय,
4.व्यक्तित्व व कृतित्व	5 रूपेय,

अपील

1. हमारा दिल्ली का पता बदल गया है कृपया कोई भी पत्र व्यवहार बजरंग मुनि,बी–56 जैन मंदिर गली शकरपुर दिल्ली– 92 पर करें।
2. कोई भी शुल्क मनी आर्डर से भेजें। अगर चेक भेजना है तो बंजरंग लाल अग्रवाल, बनारस चौक, अम्बिकापुर के नाम से भेजें।
3.